कामायनी

(श्रद्धा सर्ग : महत्वपूर्ण व्याख्याएँ)

बी.ए. द्वितीय वर्ष

हिन्दी साहित्य

:: प्रस्तुतकर्ता ::

डॉ. जगदीश शरण
सहायक प्रोफ़ेसर हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय भोजपुर
(मुरादाबाद)

[साभार-'नेट' हिन्दी : लेखक डॉ. जगदीश शरण]

Scanned with CamScanner

श्रद्धा :

(1)

कौन तुम ? संसृति-जलनिधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक;
कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक ?
मधुर विश्रान्त और एकान्त-जगत का सुलझा हुआ रहस्य;
एक करुणामय सुन्दर मौन और चंचल मन का आलस्य !

शब्दार्थ–संसृति = सृष्टि.

संदर्भ–श्रद्धा नामक सुन्दरी प्रकट होती है.

व्याख्या–हिमालय के एकान्त पर्वतीय प्रदेश में एकाकी मनु जल-प्रलय से प्रभावित संसार के विषय में चिन्तन कर रहे थे कि कोई श्रद्धा नामक सुन्दरी ने उनसे प्रश्न किया कि संसार रूपी सागर के किनारे पर बैठे हुए, उस सागर की उत्ताल लहरों से फेंकी गई मणि के समान छवि वाले तथा अपने कान्तिमान मुखाकृति से इस निर्जन प्रदेश को निरन्तर सुशोभित करने वाले हे युवक ! तुम कौन हो ?

श्रद्धा पुनः कहती है कि हे अपरिचित युवक, तुम मुझे इस संसार रूपी सागर के मधुर और एकान्त प्रदेश के निस्तब्ध वातावरण में सुलझे हुए रहस्य के समान लग रहे हो. ऐसा लगता है कि मानो एक सुन्दर और भावमय मौन ने करुणामय स्थिति धारण कर तुम्हारे ही साक्षात् रूप में स्थापना की हो अथवा मन की चंचल और अस्थिर गति आलस्य के रूप में अवतीर्ण हुई हो.

विशेष–I. **अलंकार**–(i) रूपक–संसृति–जलनिधि, प्रभा की धारा.

(ii) अनुप्रास–तीर तरंगों से.

(iii) विशेषण विपर्यय–सुलझा हुआ रहस्य, चंचल मन का आलस्य.

(iv) विशेषण विपर्यय–मधुर विश्रान्त.

(v) पदमैत्री–एकान्त विश्रान्त.

II. शृंगार रस की अवतारणा की गई है.

III. प्रथम छन्द पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने लिखा है कि तरंगों से फेंकी मणि के रूप में मनु का चित्रण विशेष प्रयोग है, जिसमें कई व्यंजनाएँ निकल सकती हैं. विजन प्रदेश में अकेले पड़े रहने से उनकी निराशाजन्य विवशता तो प्रकट होती ही है, परन्तु 'मणि' के रूप में बहुमूल्य 'जीवन' का भी आभास होता है. सागर के तट की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ भी व्यंजित हो रही हैं. दोष यही है कि 'मणि' स्त्रीलिंग है जो पुल्लिंग 'मनु' के लिए प्रयुक्त हुई है फिर भी कवि का वर्ण्य समर्थता से प्रकट हो गया है.

(2)

सुना यह मनु ने मधु गुंजार मधुकरी का सा जब सानंद;
किये मुख नीचा कमल समान प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद;
एक झिटका सा लगा सहर्ष, निरखने लगे लुटे से, कौन–
गा रहा यह सुन्दर गीत ? कुतूहल रह न सका फिर मौन।

शब्दार्थ–मधुकरी = भ्रमरी.

संदर्भ–एकान्त विजन प्रदेश में चिन्तनीय अवस्था में मनु को किसी अपरिचित स्वर ने अपनी ओर आकर्षित किया.

व्याख्या–जब मनु ने कमल के समान अपना मुख नीचा किए हुए भ्रमरी की मधुर आवाज के समान स्वर किसी आगन्तुक के मुख से सुना तो उन्हें उन मधुसिक्त शब्दों से उसी प्रकार आनन्द की अनुभूति हुई जिस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि को अपने प्रथम छन्द से हुई थी. भाव यह है कि श्रद्धा का वह मधुर कथन आदिकवि वाल्मीकि के प्रथम छन्द के समान था. श्रद्धा का मधुर स्वर सुनकर मनु की विचार शृंखला अक्समात् स्खलित हो गई और उन्हें एक झटका सा लगा. वह आश्चर्यचकित होकर भौंचक्के–से होकर प्रफुल्लित भाव से इतस्तः देखने लगे. उनकी हार्दिक उत्सुकता मौन न रह सकी और वह उमंगित होकर सहसा पूछने लगे कि यह कौन है जो सुन्दर संगीत गा रहा है?

Scanned with CamScanner

विशेष–I. अलंकार–(i) उपमा–मधुकरी का सा, कमल समान, ज्यों सुन्दर छंद.

(ii) अनुप्रास–मनु मधु मधुकरी.

(iii) सभंग पद यमक–मधु, मधुकरी.

(iv) विशेषण विपर्यय–कुतूहल.

II. प्रथम कवि आदिकवि वाल्मीकि को माना जाता है. एक बार किसी बधिक ने रमण करते हुए क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर क्रौंच का अपने बाण से वध कर दिया था. उस हृदय विदारक दृश्य को देखकर वाल्मीकि का मन करुणा से भरकर रो उठा. उनका वही रुदन श्लोक-रूप में फूट पड़ा जिसे काव्य का आदि श्लोक माना जाता है. वह श्लोक इस प्रकार है :

"मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समा : ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी : काममोहितम् ॥"

III. डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि कमल के समान नीचे को मुख किए हुई भ्रमरी के समान श्रद्धा के वचन सुनना बड़ी ही रमणीय कल्पना है. वह प्राकृतिक दृश्य, जहाँ कमल अर्द्धमुकलित हो, अधोमुख हो और भ्रमरी उसके ऊपर गुंजार कर रही हो, आँखों के सामने झलक जाता है. कमल के नीचे को मुख होने में समय की स्थिति भी मुखरित हो रही है, या तो वह रात्रि का समय था अथवा अरुणोदय से पूर्व की बेला. नीचे को मुख किए बैठे हुए मनु के निकट श्रद्धा सुन्दरी कुछ कह रही है. कोई रमणी स्वतः ही किसी एकाकी पुरुष से कुछ कहे, यह स्वयं में मनोहर कल्पना है.

(3)

और देखा वह सुन्दर दृश्य नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम-वैभव में लता समान चंद्रिका में लिपटा घनश्याम।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया, उन्मुक्त;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

शब्दार्थ–इन्द्रजाल = जादू.

संदर्भ–मनु सुन्दर दृश्य देखते हैं.

व्याख्या–मनु ने नेत्रों को आश्चर्यचकित कर देने वाला सुन्दरी श्रद्धा का वह सुन्दर रूप एक दृश्य-विशेष के रूप में देखा. श्रद्धा का वह सुन्दर रूप-दृश्य इस प्रकार लग रहा था कि मानो कोई जादू हो और कोई सुन्दर लता अपार फूलों के वैभव से लदी हुई हो अथवा कोई घनश्याम चाँदनी के आवरण में लिपटा हुआ हो. हृदय और भावना नामक कोमल भावों की प्रतिकृति रूप श्रद्धा के बाह्य शरीर पर दृष्टिगोचर हो रहा था. उसी रूप को मनु ने श्रद्धा के हृदय की बाह्य अनुकृति के रूप में देखा. श्रद्धा का शरीर लम्बा और उन्मुक्त था. उसका वह सुन्दर शरीर इस प्रकार दिख रहा था कि मानो मधुर और मन्द-मन्द बहती हुई सुगन्धित वायु से साल नामक वृक्ष का कोई पौधा क्रीड़ा करते हुए अपनी उन्मुक्त शोभा प्रकृति के उस स्वच्छन्द वातावरण में बिखेर रहा हो.

विशेष–I. अलंकार–प्रथम दो पंक्तियों में रूपकातिशयोक्ति तथा उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है.

II. डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने इन दोनों छन्दों में हुए श्रद्धा के रूप-चित्रण पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'नयन का इन्द्रजाल अभिराम' कहने से प्रकट होता है कि नेत्रों के अस्तित्व का सम्पूर्ण उद्देश्य 'दृश्य' रूप में सामने आ गया हो. जैसे नेत्रों का निश्रेयस् इसी सुन्दर दृश्य को देखने में था 'कुसुम वैभव' द्वारा 'लता' तथा 'चन्द्रिका' से 'घनश्याम' की शोभा बताने में छायावादी रूप-चित्रण की अतीन्द्रिय मनोवृत्ति प्रकट हो रही है. यह प्रवृत्ति श्रद्धा के रूप-चित्रण सम्बन्धी सभी छन्दों में मुखर है. 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,' में श्रद्धा के अंगों की कोमलता तो आभासित हो रही है, परन्तु उस रम्य, मनोहर प्रकृति के समान ही हृदय के मधुर भावना लोक का भी आभास हो रहा है, जिसमें श्रद्धा के विभिन्न भाव बड़ी मधुरता से मुखर हो रहे हों. प्रकृति के 'क्रीड़ित शिशु-साल' की भाँति ही, श्रद्धा के हृदय के भावों के शिशु भी अपने सहज भोलेपन का आभास दे रहा है. यहाँ श्रद्धा 'हृदय' का अथवा हृदय के गुणों का भी प्रतिनिधित्व कर रही है.

(4)

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हों ज्यों बिजली का फूल मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम-बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।

शब्दार्थ–परिधान = वस्त्र, व्योम = आकाश, अरुण = लाल.

संदर्भ–श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए प्रसादजी कहते हैं.

व्याख्या–नील वर्ण के परिधान के मध्य श्रद्धा का कोमल, सुकुमार और अधखुला सुन्दर शरीर बड़ा ही छविमान हो रहा था. नीले रंग के वस्त्रों के बीच श्रद्धा का अधखुला शरीर उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे श्याम वर्ण के मेघों के वन के मध्य में गुलाबी रंग से युक्त बिजली का फूल उन्मीलित हो रहा हो. श्रद्धा के मुख की शोभा निराली थी. उसे देखकर ऐसा आभास होता था कि मानो पश्चिम दिशा के आकाश में काले बादल घिर आये हों और उन घने बादलों की विरलता को भेदकर अपार छवि वाला सूर्यमण्डल निकल रहा हो.

Scanned with CamScanner

विशेष—I. अलंकार–(i) उपमा–ज्यों बिजली का फूल.

(ii) उत्प्रेक्षा–पंक्ति 3, 4.

II. श्रद्धा के 'नील परिधान' के विषय में बाबू गुलाबराय का कथन है कि नीला वस्त्र चिरस्थायी प्रेम का प्रतीक होता है, क्योंकि नीला वस्त्र बार-बार धोने से भी हल्का नहीं पड़ता. सूर ने भी राधा को नीली फरिया पहनाई है.

इसके विपरीत बिहारी ने लाल सुर्ख रंग को चिर स्थायी प्रेम का प्रतीक माना है :

"चटक न छाँड़तु घटत हूँ, सज्जन-नेहु गँभीरु ।
फीकौ परै न, बरु फटै, रँग्यौ चोल, रँग चीरु ॥"

III. बादलों के बीच से निकलते हुए सूर्य की शोभा और भी अधिक बढ़ जाती है. अतएव नीले परिधान से आवृत्त शरीर वाली श्रद्धा के मुख की तुलना विरल बादलों को चीरते हुए निकलते सूर्य की शोभा से करना उपयुक्त है. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी कृष्ण के सुन्दर मुख की तुलना लगभग इसी प्रकार से की है :

"कुकुभ शोभित गोरज बीच से ।
निकलते व्रजवल्लभ यों लसे ।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा ।
विलसता नभ में नलिनीश है ।"

– प्रियप्रवास

(5)

घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलम्बित मुख के पास;
नील घन-शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास ।
और उस मुख पर वह मुसक्यान ! रक्त किसलय पर ले विश्राम;
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम ।

शब्दार्थ–अंस = कंधा, अम्लान = स्वच्छ, निर्मल.

संदर्भ–श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए प्रसाद जी कहते हैं.

व्याख्या–श्रद्धा के सुन्दर मुख के पास उसके कन्धों का आश्रय लिए हुए घने और घुँघराले बाल सुशोभित हो रहे थे. उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे नीले रंग के लघु सुकुमार मेघ अमृत भरने के लिए चन्द्रमा के पास आये हों. श्रद्धा के प्रफुल्लित मुख के ओठों के बीच उसकी मुस्कराहट इस प्रकार भली लगती थी जैसे उगते हुए सूरज की प्रेम-सिक्त लालिमा लिए हुए उज्ज्वल किरण रक्तिम किसलय पर, आलस्य में डूबी हुई अँगड़ाई लेते हुए, विश्राम कर रही हो.

विशेष—I. अलंकार–(i) उपमा–शावक से.

(ii) अनुप्रास–सुकुमार सुधा.

(iii) गम्योत्प्रेक्षा–सुधा....पास.

(iv) मानवीकरण–किरण.

(v) औचित्य–प्रथम दो पंक्तियाँ.

II. 'नील घन-शावक से सुकुमार' के प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने लिखा है कि श्रद्धा के केशों को 'सुकुमार नीलघन शावक' के सादृश्य में बैठाना बड़ा ही उपयुक्त और अभिप्राय गर्भित है. उनकी उपमा काले सर्पों से दी जाती तो रति-भाव का संचार बाधित होता. यदि 'मधुकर' से दी जाती तो उसकी स्वार्थ-वृत्ति प्रकट होती और कवि, चूँकि, श्रद्धा के माध्यम से निःस्वार्थ समर्पण का आदर्श प्रस्तुत करना चाहता है. इसीलिए 'नीलघन शावक' की उपमा उपयुक्त है. इसमें बाह्य-वर्ण की समता तो है ही, आन्तरिक गुण-साम्य भी है.

प्रहलाददत्त शर्मा कौशिक ने प्रथम छन्द की प्रथम पंक्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'अंस अवलम्बित' का अर्थ यदि कंधों तक लटकते हुए किया जाय तो श्रद्धा के पद्मिनी जाति का होने में सन्देह हो सकता है, क्योंकि पद्मिनी जाति के केश यथासम्भव अत्यन्त लम्बे होने चाहिए. यहाँ पाश्चात्य प्रभाव से प्रसादजी नहीं बच सके हैं.

(6)

कहा मनु ने, "नभ धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरुपाय;
एक उल्का सा जलता भ्रान्त, शून्य में फिरता हूँ असहाय ।
शैल निर्झर न बना हतभाग्य, गल नहीं सका जोकि हिम खंड;
दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक आह वैसा ही हूँ पाषंड ।

शब्दार्थ–शून्य = निर्जन, अंक = मोद.

संदर्भ–मनु निराशा भरे शब्दों में अपना परिचय देते हुए श्रद्धा से कहते हैं.

व्याख्या–पृथ्वी और आकाश के मध्य मेरा निरर्थक जीवन एक रहस्यमय पहेली के रूप में प्रत्यक्ष हो रहा है. मैं इस निर्जन प्रदेश में आश्रयहीन होकर एक उल्का-पिण्ड की भाँति भटकता हुआ इधर-उधर घूम रहा हूँ अर्थात् मेरा जीवन लक्ष्यहीन और उद्देश्यरहित है. मनु पुनः कहते हैं कि मैं उस अभागे पाषाण-खण्ड के समान हूँ जो निर्झर के रूप में कभी काम न आया, मैं बर्फ का वह भाग्यहीन खण्ड हूँ जो जल के रूप में कभी भी द्रवित न हो सका. मेरा जीवन उस कर्महीन पर्वत-खण्ड के समान है, जो जलनिधि की अंक से सर्वथा दूर ही रहा अर्थात् जिस प्रकार हिम प्रदेश से उष्णता को प्राप्त होकर तरल हुआ जल नदी का रूप लेकर सागर में मिलकर सफल हो जाता है, उसी प्रकार मेरा यह जीवन सफल होने में

Scanned with CamScanner

अयोग्य ही रहा. पर्वत-खण्ड के समान मेरा जीवन एकाकी ही रहा.

विशेष–I. अलंकार–(i) विशेषण विपर्यय–जीवन-निरुपाय.

(ii) उपमा–उल्का सा.

(iii) काव्य लिंग–पंक्ति 4.

II. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने इस छन्द पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि उल्का-तारे से मनु के जीवन की तुलना प्रभाव-साम्य तथा गुण-साम्य के आधार पर हुई है. दूसरे छन्द में 'शैल निर्झर' तथा 'हिम खण्ड' में जो समता है वह परिणाम-साम्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है. बर्फ जल-रूप में बदलकर कृषि-सिंचन तथा सागर-मिलन का कार्य सम्पन्न करता है, यही उसके जीवन की सार्थकता है. इस प्रकार की कार्य-सिद्धि मनु को अब तक जीवन में नहीं मिल सकी है. मनुष्य के अस्तित्व की सार्थकता सहृदय होने में मानी जा सकती है, परन्तु मनु सह-हृदय की अनुभूति नहीं कर पाये हैं.

प्रस्तुत छन्द में छायावादी नैराश्य की पूर्ण झलक हमें मिल जाती है. इसी प्रकार की नैराश्य-भावना अन्य छायावादी कवियों में भी दिखाई पड़ती है. उसके कुछ उदाहरण यहाँ दृष्टव्य हैं–

**"जीवन चिरकालिक क्रन्दन
मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जो भरसक झकझोर
मेरे दुःख की गहन अन्ध
तम-निशि न कभी हो भोर।"**

–निराला

**"मैं नीर भरी दुःख की बदली !
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।"**

– महादेवी वर्मा

**"मुझे चाँद कहा करता है–
तू तो है लघु मानव केवल
पृथ्वी-तल का वासी निर्बल
तारों का असमर्थ अश्रु भी नभ से नित्य बहा करता है।"**

–हरिवंशराय बच्चन

(7)

**कौन हो तुम वसंत के दूत, विरस पतझड़ में अति सुकुमार;
घन तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मंद बयार।
नखत की आशा किरण समान हृदय की कोमल कवि की कांत–
कल्पना की लघु लहरी दिव्य कर रही मानस हलचल शांत।**

शब्दार्थ–विरस = नीरस, तिमिर = अंधकार, चपला = विद्युत.

संदर्भ–सृष्टि के विनाश पर चिन्तन करते हुए मनु निराश हैं, तभी एक सुन्दर युवती श्रद्धा मनु से उनका परिचय पूछती हैं.

व्याख्या–अपने परिचय में मनु अपने एकाकी जीवन की वेदना को अभिव्यक्त करते हैं. तदन्तर मनु उस सुन्दरी से पूछते हैं कि नीरस पतझड़ में अपनी मधुरवाणी से वसन्त के आने की सूचना देने वाली सुकुमार कोकिला के समान हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? तुम्हारा आगमन उसी प्रकार भला लग रहा है, जैसे घने अंधकार में विद्युत् की कोई किरण द्युतिमान हो रही हो अथवा ग्रीष्म की भीषण तपन को शान्त करने वाली शीतल मन्द वायु का कोई झोंका हो. तुम मुझ असहाय और भग्न-हृदय वाले मनुष्य के लिए रात्रि में चमकने वाले नक्षत्र की आशा रूपी किरण के समान लग रही हो. तुम कवि की कोमल कल्पना के समान अपनी भाव-लहरियों से मेरे मन की अशान्ति का शमन कर रही हो. भाव यह है कि जिस प्रकार कवि-हृदय की सुकोमल कल्पना सांसारिक कष्टों से पीड़ित व्यक्ति को जीवन जीने का सन्देश देती है, उसी प्रकार कवि की दिव्य कल्पना के समान मेरे उत्तापित हृदय को आनन्द में निमज्जित कर रही हो.

विशेष–I. अलंकार–(i) उल्लेख–सम्पूर्ण पद.

(ii) विषम–तपन में शीतल मंद बयार.

(iii) उपमा–आशा किरण समान.

(iv) रूपक–आशा किरण, कल्पना की लघु लहरी.

(v) अनुप्रास–किरण कोमल कवि की कांत.

(vi) रूपकातिशयोक्ति–मानस हलचल.

II. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने प्रस्तुत दोनों छन्दों पर विस्तृत टिप्पणी करते हुए लिखा है कि इन दोनों छन्दों में कवि के द्वारा 'उपचार वक्रता' का आश्रय लिया गया है. इसके द्वारा जीवन का एक सुखमय स्वप्न ही अभिव्यक्त हो उठा है. पुरुष स्त्री के सौन्दर्य की झलक देखकर, विमुग्ध हो, किस प्रकार अपने भावों को अभिव्यक्त करता है, जिससे वह सौन्दर्य उसकी स्थिति पर तरस खाकर उसकी बाहों वाला हो जाय. पुरुष की यह अभिव्यक्ति सहज ही है और फिर वियोग-भावना की अनुभूति करने वाला पुरुष तो एक प्रकार से कवि होता ही है. इन दो छन्दों की एक बड़ी विशेषता यह है कि 'बयार' और 'नखत' इन दो अप्रचलित शब्दों की योजना होने पर भी कोमल-कान्त पदावली का माधुर्य वैसा ही बना रहा है. 'वसन्त के दूत, 'चपला की रेख', 'बयार', 'किरण', 'कवि-कल्पना की लघु लहर' ये उपमान-उपमेय श्रद्धा के स्वरूप और उसके भाव-सौन्दर्य को सहज ही

Scanned with CamScanner

अभिव्यक्त कर देते हैं और 'विरस पतझड़', 'तिमिर घन', 'नखत', 'कवि' इन प्रयोगों से मनु की स्थिति का पूरा आभास हो जाता है. अतः एकाकी उस पुरुष के मानस में अनेक प्रश्नों की उथल-पुथल को शान्त करने वाली श्रद्धा की उपस्थिति पाठकों को भी रम्य कल्पना में तल्लीन करने की सामर्थ्य रखती है.

प्रथम छन्द के दोष पर टिप्पणी करते हुए प्रोफेसर नगीन चन्द्र सहगल ने लिखा है कि इस छन्द में काव्यगत भाषा-रचना सम्बन्धी 'समाप्त पुनरान्त' दोष है. 'कौन हो तुम वसन्त के दूत, विरस पतझड़ में अति सुकुमार' में 'में' के पश्चात् वाक्य समाप्त हो गया है, पर 'अति सुकुभार' विशेषण द्वारा यह वाक्य फिर उठाया गया है.

श्रद्धा को 'वसन्त के दूत' पुल्लिंग विशेषण के सम्बोधन पर किंचित आरोप मढ़ते हुए डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने कहा है कि श्रद्धा (स्त्रीलिंग) के लिए 'वसन्त के दूत' पुल्लिंग प्रयोग अनुभूति में एक झटका सा देता है पर अपने प्रेमास्पद को 'तुम' कहकर ही अभिहित किया जाता है. लक्षणा से यहाँ भी स्त्रीलिंग में अर्थ निकल आता है. इतना ही नहीं तो यह प्रयोग फारसी प्रभाव मान लीजिए. वहाँ माशूक के लिए पुल्लिंग में सम्वोधन होता है.

(8)

दुःख की पिछली रजनी वीच विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल;
ईश का वह रहस्य वरदान कभी मत इसको जाओ भूल।

शब्दार्थ–विकसता = प्रकट होता.

संदर्भ–सृष्टि के विनाश से दुःखी एवं जीवन के वैषम्य से निराश मनु को समझाते हुए श्रद्धा कहती है.

व्याख्या–अरे मनु ! जगत् की विषमता से पीड़ित होकर तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि सृष्टि का यही क्रम है. जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् नवीन प्रभात का उदय होता है उसी प्रकार दुःख के समय के बाद व्यक्ति के जीवन में सुख का आगमन होता है. जिस प्रकार यह आकाश अपने नीलावरण में प्रभात के स्वरूप को छिपाये रहता है, उसी प्रकार दुःख भी अपनी कालिमा के आवरण में सुखमय शरीर को छिपाये रहता है. भाव यह है कि प्रत्येक दुःख के बाद सुख का आगमन अवश्यम्भावी है. श्रद्धा पुनः कहती है कि हे मनु, जिस दुःख को तुम अपने जीवन का अभिशाप और संसार के समस्त कष्टों का मूल समझते हो, तो तुम्हें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वही दुःख परम शक्ति द्वारा प्रदत्त एक रहस्यमय वरदान भी है.

विशेष–I. अलंकार–(i) 'दुःख की रजनी' तथा 'सुख का नवल प्रभात' में रूपक.

(ii) 'एक परदा यह झीना नील' में रूपकातिशयोक्ति.

(iii) अपह्नुति–अंतिम दो पंक्तियाँ.

II. दुःख को ईश्वरीय वरदान बताया गया है. रीतिकालीन कविवर बिहारी ने भी दुःख के सम्बन्ध में उचित ही लिखा है–

''दियौ सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अएरि।
जापै सुखु चाहत लियौ, ताके दुखहिं न फेरि ॥''

तथा–

''दीरघ साँस न लेहि दुःख, सुख साईं हि न भूलि।
दई-दई क्यौं करतु है, दई-दई सु कबूलि ॥''

एक कवि ने दुःख-सुख की व्याख्या इस प्रकार की है–

''सुख में गुजार दिया जो जीवन,
जीवन गया सभी बेकार।
दुःख का एक पल भी जीना–
बन गया युग चार।
सुख के सौ पल निरर्थक,
दुःख का एक पल भी ठीक।
सुख के व्यक्ति सौ बेकार,
दुःख का हीरा एक ही मीत।
सुख की सौ आशाएँ कमजोर,
दुःख की एक आश बलवान
दुःख ही विश्व की परिभाषा,
होती है जिसमें पहचान।
दुःख की एक बूँद भी अमृत–
सुख का सागर भी बेकार।
ईश का यह शुभ वरदान–
दुःख फल चारों का भण्डार।
सुख सब ज्वालाओं का मूल,
दुःख सब मूलों का समाधान,
सुख मानव की हँसती भूल,
दुःख है उन भूलों का ज्ञान !
मैं दुःख में जब खो जाता हूँ,
मिल जाता है मानव का सत्,
'दुःख का एक क्षण मिथ्या है'–
तू ऐसी बात कहे मत।''

Scanned with CamScanner

(9)

...ता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पंदित विश्व महान;
...दुःख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान।
...समरसता का अधिकार, उमड़ता कारण जलधि समान;
...से नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान!

शब्दार्थ–व्यस्त = परेशान. भूमा = समाधि, विराटता.

संदर्भ–दुःख और सुख–इन दो आवश्यक पहलुओं से ...हुए जगत् के वैषम्यपूर्ण स्वरूप को स्पष्ट करते हुए श्रद्धा मनु से कहती है.

व्याख्या–अरे मनु! यह अखिल विश्व दुःख और सुख के ...य की पीड़ा से व्यस्त होकर गतिमय हो रहा है. विकास ...त्य का वैषम्य ही दुःख-सुख को सम्भूत करता है और ...दुःख-सुख विराट् चितिशक्ति द्वारा प्रदत्त मधुर दान है. ...यह है कि इस विकसनशील संसार की स्थिति गतिशील ...रहती है. अतएव इसकी परिवर्तनशील प्रवृत्ति में दुःख ...सुख की विषम स्थिति बनी रहती है. दुःख और सुख के ...य की यह स्थिति परम् शक्ति भूमा की ही देन है.

...समरसता (आनन्द की स्थिति) का अधिकार समस्त ...त्यों का है, किन्तु व्यक्तिगत और सीमित सुखों की पूर्ति ...मानव सुख की खोज में लगा रहता है. सुख खोजने की ...की यही सीमित लालसा वैषम्य की स्थिति का कारण ...ती है. उसकी आकांक्षाएँ सागर की लहरों के समान ...र्षण के प्रति नित्य ही उमड़ती रहती हैं. उसकी इच्छा ...आकांक्षाएँ उसी प्रकार आकर्षण से आबद्ध होती रहती ...जिस प्रकार सागर की नीली लहरों के बीच सुख रूपी ...यों का समूह द्युतिमान होकर आकर्षक बना रहता है. ...तक मनुष्य समरसता की स्थिति को प्राप्त नहीं होता, ...य की यह स्थिति निर्बाध बनी रहती है.

विशेष–I. अलंकार–(i) मानवीकरण एवं विशेषण ...र्यय-विश्व.

(ii) पदमैत्री–दुःख-सुख.

(iii) उपमा–जलधि समान.

(iv) रूपकातिशयोक्ति–मणिगण.

(v) सांगरूपक–सम्पूर्ण छंद

II. प्रस्तुत छन्द में आये 'विषमता,' 'समरसता', 'भूमा मधुमय दान' 'समरसता का अधिकार' नामक शब्दों तथा ...वाक्यों पर डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने विस्तृत टिप्पणी की है. टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं–

1. **विषमता और समरसता**–जगत् की गतिशीलता में ...नश्वरता देखते हुए दुःख की व्यापकता एवं मरणशीलता का ही दर्शन करना तथा खण्डित जीवन-पद्धति को अपने सीमित सुखों में बाँध देना ही विषमता है. 'समरसता' वह अवस्था होती है जिसमें सुख-दुःख, पाप-पुण्य सभी तन्मय हुए आनन्द तत्व में विलीन दिखाई देते हैं. इस स्थिति में किसी प्रकार की सुख-दुःखानुभूति नहीं होती. परमार्थ सत्ता की पवित्र व्यापकता एवं आनन्द-सागर की हिलोरों में निमग्नता का अनुभव सामरस्य स्थिति को प्राप्त हुआ व्यक्ति करता है.

2. **भूमा का मधुमय दान**–'अतिशयेन बहु इति भूमा' अर्थात् 'भूमा' शब्द में बाहुल्य और असीमित स्थिति का द्योतन होता है. छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि–'यो वै भूमा तत्सुखम्', 'नाल्पे सुखमस्ति, भूमा वै सुखम्' अर्थात् 'जो भूमा है वही सुख है–

'अल्प में सुख नहीं भूमा ही सुख है'।

3. **समरसता**–यह पारिभाषिक शब्द प्रत्यभिज्ञादर्शन का आधारिक शब्द है. जिस प्रकार सरिता का जल सागर के जल में मिलकर तन्मय हो जाता है उसी प्रकार व्यक्ति की आत्मा-परमात्म-भाव में लीन होकर शिव-रूप में समरसता की स्थिति को प्राप्त होता है. आनन्द-पद में लीन योगी की स्थिति ही समरसता होती है.

4. 'समरसता का अधिकार' यह 'कारण' है. किसी भी 'कार्य' का कोई-न-कोई 'कारण' होता है. समरसता का अधिकार 'कारण' है. इसी 'कारण' 'विषमता' रूप कार्य की उत्पत्ति होती है. जगत् में बड़ा दुःख दिखाई देता है. समरसता का अधिकार सबको है, फिर भी प्राणी तुच्छ स्वार्थों में फँसे रहकर दुःख, क्लेश का ही अनुभव करते दिखाई देते हैं, क्योंकि उन्हें अपने 'अधिकार' का समुचित उपयोग करना नहीं आता और इस 'विषमता' में ही जगत् का रूप दिखाई देता रहता है.

'कामायनी' के अन्तिम सर्ग 'आनन्द' में कवि जयशंकर प्रसाद ने 'समरसता' की स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट रूप से समझाया है :

"हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमीं हैं;
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है।
शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है समरस है जोकि जहाँ है;
चेतन समुद्र में जीवन लहरों–सा बिखर पड़ा है;
कुछ छाप व्यक्तिगत, अपना निर्मित आकार खड़ा है।
इस ज्योत्स्ना के जलनिधि में बुद्बुद सा रूप बनाये;
नक्षत्र दिखाई देते अपनी आभा चमकाये।
वैसे अभेद सागर में प्राणों का सृष्टि-क्रम है;
सब में घुल मिलकर रसमय रहता यह भाव चरम है।

Scanned with CamScanner

अपने दुःख-सुख से पुलकित यह मूर्त विश्व सचराचर;
चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत् चिर सुन्दर।
सब की सेवा न परायी वह अपनी सुख संसृति है;
अपना ही अणु-अणु कण-कण द्वयता ही तो विस्मृति है।
मैं की मेरी चेतनता सबको ही स्पर्श किये सी;
सब भिन्न परिस्थितियों की है मादक घूँट पिये सी।
चेतन का साक्षी मानव हो निर्विकार हँसता सा;
मानस के मधुर मिलन में गहरे-गहरे धँसता सा।
सब भेदभाव भुलवा कर दुःख-सुख को दृश्य बनाता;
मानव कह रे! 'यह मैं हूँ' यह विश्व नीड़ बन जाता।'';

(10)

लगे कहने मनु सहित विषाद :—''मधुर मारुत से ये उच्छवास;
अधिक उत्साह तरंग अबाध उठाते मानस में सविलास।
किन्तु जीवन कितना निरुपाय! लिया है देख नहीं सन्देह;
निराशा है जिसका परिणाम, सफलता का वह कल्पित गेह।''

शब्दार्थ—विषाद = दुःख. निरुपाय = विवश.

संदर्भ—श्रद्धा के प्रति मनु का कथन है.

व्याख्या—श्रद्धा ने निराश मनु को समझाया कि यह संसार दुःख और सुख के वैषम्य से संचालित है, किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक दुःख के बाद सुख का आगमन अवश्यम्भावी है. इन शब्दों से मनु को संतोष तो अवश्य हुआ, फिर भी खिन्न मन से वह श्रद्धा से कहने लगे कि हे सुन्दरी! यद्यपि तुम्हारे शब्द मधुर और शीतल वायु के समान हृदय हो शीतलता प्रदान करने वाले हैं. इन शब्दों को सुनकर हृदय में उत्साह और आनन्द की ऐसी लहर उठती है जिस प्रकार पवन के वेग से जल तरंगायित होता है अर्थात् तुम्हारा कथन मेरे मानस को अपार शान्ति प्रदान करने वाला है, किन्तु मैंने अनुभव किया है कि यह जीवन निरुपाय है. मैं भली-भाँति इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ और इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि इस जीवन का अन्त केवल निराशामय है. यह सफलता का मात्र कल्पित घर है अर्थात् इस जीवन में सफलता प्राप्त करना कल्पना-मात्र है. भाव यह है कि जीवन को विकसित करने का कोई उपाय नहीं है और इसकी परिणति केवल निराशा, दुःख और शोक है.

विशेष—I. प्रस्तुत छन्दों की अंतिम पंक्ति में रूपक, प्रथम पंक्ति में उपमा तथा 'मानस' में श्लेष अलंकारों का प्रयोग किया गया है.

II. मनु का जीवन के प्रति उदास होना उचित ही है, क्योंकि उन्होंने जीवन को प्रलय के रूप में देखा है. यहाँ छायावादी निराशा और वेदना की झलक मिलती है. जीवन के प्रति ऐसी वेदना निराला ने भी व्यक्त की है–

''हार गया जीवन-रण,
छोड़ गये साथी-जन
एकाकी, नैश-क्षण,
कण्टक-पथ, विगत-पाथ।''

(11)

तप नहीं केवल जीवन सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;
तरल आकांक्षा से है भरा सो रहा आशा का आह्लाद।
प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।

शब्दार्थ—अवसाद = दुःख एवं निराशा.

संदर्भ—जीवन के लक्ष्य को भली-भाँति समझाती हुई श्रद्धा मनु से कहती है.

व्याख्या—जीवन का एकमात्र लक्ष्य या सत्य तपस्या करना नहीं है अर्थात् अपने सांसारिक कर्त्तव्य को विस्मृत कर जिस तपस्या को तुमने जीवन का स्थायी पहलू मान लिया है, वह निरर्थक है. वस्तुतः जीवन के लिए जीवन का अस्तित्व ही एकमात्र सत्य है. इस जीवन में जीवन की उपेक्षा नहीं की जा सकती. तपस्या को जीवन का सत्य मानने के कारण ही जीवन की क्षण-भंगुरता को लक्षित कर तुम्हारे मन में अवसाद का जन्म हुआ है, किन्तु तुम्हें यह स्मरण होना चाहिए कि इस जीवन के अन्तर में विकास की आकांक्षाओं से आपूरित आशापूर्ण आह्लाद भरा हुआ है. अर्थात् इसके भीतर आशाओं की वह प्रसन्नता है जिससे जीवन का विकास हो सकता है.

पुनः अन्योक्ति के रूप में श्रद्धा मनु को प्रेरित करती हुई कहती है कि जिस प्रकार नव-युवती प्रतिदिन अलंकारों से अपने अंग-प्रत्यंग को सजाकर शृंगार करती है उसी प्रकार यह प्रकृति भी नित्य-प्रति उन्मीलित पुष्पों से अपना शृंगार किया करती है. म्लान अथवा मुरझाये हुए पुष्प कभी भी प्रकृति का शृंगार अथवा सौन्दर्य-वर्द्धन नहीं किया करते. मुरझाये हुए फूल तो शीघ्र ही उस धूलि में खो जाते हैं जिन्हें वह पहले से अपने में मिलाने के लिए उत्सुक और उमंगित थी. भाव यह है कि सौन्दर्य के प्रसाधन तत्व एक बार ही अपना कार्य कर अपना अस्तित्व खो देते हैं. अतएव जीवन में नित्य नवीनता लाये बिना सुख या आनन्द नहीं है. जीवन को स्थायीत्व प्रदान करने के लिए उसमें नित्य नवीनता या परिवर्तन आवश्यक है.

विशेष—I. अलंकार—(i) अपह्नुति—प्रथम पंक्ति.

(ii) रूपकातिशयोक्ति—बासी फूल, धूल.

Scanned with CamScanner

(iii) लक्षणा–तरल आकांक्षा.

(iv) चैतन्यारोपण–आशा का आह्लाद.

II. प्रथम छन्द में इस प्राकृतिक सत्य को उभारा गया है कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य तप नहीं वरन् वैश्विक जीवन संचालित करने के लिए 'जीवन का अस्तित्व' ही एकमात्र सत्य है. मनु की पलायन-प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए गुलाब राय ने लिखा है कि मनु पलायनवाद की ओर जाता है. श्रद्धा उसको जीवन-संग्राम की ओर ले जाती है. उसने मनु को निराशा के गर्त से निकालकर जीवन में प्रवेश कराया है.

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने इन छन्दों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि श्रद्धा के मुख से जिस प्रकार के उद्गार कवि ने प्रकट कराये हैं, उनसे विपत्तियों में लोहा लेने तथा जीवन-संघर्ष में जूझने की बड़ी प्रबल प्रेरणा प्राप्त होती है. इस प्रकार श्रद्धा के जीवन-दर्शन के साथ आधुनिक की विचारधारा का भी सामंजस्य हम सहज ही स्थापित कर पाते हैं.

(12)

एक तुम, यह विस्तृत भू-खण्ड प्रकृति वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन आनन्द ।
अकेले तुम कैसे असहाय यजन कर सकते ? तुच्छ विचार ।
तपस्वी ! आकर्षण से हीन कर सके नहीं आत्म विस्तार ।

(नैट परीक्षा 1996)

शब्दार्थ–अमंद = पूर्ण, निरंतर.

संदर्भ–निराश मनु को समझाती हुई श्रद्धा कहती है.

व्याख्या-हे मनु ! प्रकृति-वैभव से सम्पन्न इस संसार में पूर्वकृत संचालित कर्मों का निरन्तर भोग होता रहता है. इसके साथ ही उन मुक्त कर्मों के द्वारा भविष्य के लिए नित्य नवीन कर्मों का संचय भी होता रहता है. इस प्रकार जड़ दिखाई देने वाला भी यह समग्र भूमण्डल चेतनशील रहते हुए निरन्तर आनन्द में तल्लीन बना रहता है और एक तुम हो जो चेतनशील होते हुए भी जीवन-आनन्द के प्रति निराश बने बैठे हो.

हे तपस्वी मनु ! तुम एकाकी होकर असहाय हो. अतएव तुम अकेले रहकर इस सृष्टि का विकास बिना किसी जीवन-साथी के कैसे कर सकते हो ? तुम्हारे निराशाजन्य विचार तुम्हारी तुच्छ मनोवृत्ति के ही प्रतीक हैं. सृष्टि के विकास के आनन्द से विमुख होकर तुम अपनी आत्मा का विस्तार करने में स्वयं को असमर्थ पा रहे हो. इसलिए तुम अपनी आत्मा का विस्तार करके किसी अन्य को स्वीकार कर सृष्टि के विकास में सहयोग प्रदान करो, तभी सृष्टि का विकास रूपी यज्ञ पूर्ण हो सकेगा.

विशेष–I. अलंकार–(i) विषम–पंक्ति 2.

(ii) पुनरुक्तिप्रकाश–भोग-भोग.

(iii) वक्रोक्ति–तुम कैसे.

II. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र के अनुसार छन्द में प्रयुक्त 'यजन' शब्द सृष्टि-क्रम के विकास का द्योतक है.

III. सामाजिकता का प्रतिपादन है.

(13)

समर्पण लो सेवा का सार सजल संसृति का यह पतवार;
आज से यह जीवन उत्सर्ग इसी पद तल में विगत विकार ।

शब्दार्थ–सजल = जीवंत.

संदर्भ–श्रद्धा मनु को सहज भाव से समझाती हुई कहती है.

व्याख्या–मैं तुम्हारी सहधर्मिणी बनकर मैं अपनापन तुम्हारे अस्तित्व में समर्पित करती हूँ. आज से मैं अपना जीवन तुम्हारे चरणों में अर्पित करना चाहती हूँ, क्योंकि वेदना के जल रूपी इस संसार में अपनी जीवन रूपी नौका को संचालित करने और पार लगाने का एकमात्र अवलम्बन यही सेवा का समर्पण पतवार के तुल्य है. अतएव तुम मेरा समर्पण सहर्ष स्वीकार करो, क्योंकि यही समर्पण सेवा का मूल रहस्य है.

विशेष–I. अनुप्रास तथा परम्परित रूपक अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है.

II. प्रस्तुत छन्द में मनु और श्रद्धा के भावी मधुर सम्बन्ध का संकेत मिलता है. भागवतपुराण में भी मनु और श्रद्धा को पति और पत्नी के रूप में उपस्थित किया है जिनसे दश पुत्रों का जन्म होना बताया है :

"ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान् स आत्मवान् ॥"

'त्रिपुर रहस्य' में भी श्रद्धा को स्नेहशील माता के रूप में वर्णित किया है जो जगत् की धात्री है :

"श्रद्धा माता प्रपन्नं सा वत्सलेन सुते सदा ।
रक्षति प्रौढ़भीतिभ्यः सर्वथा न हि संशयः ॥
स भवेत सर्वतो हीनो यः श्रद्धारहितो नरः ।
श्रद्धा हि जगतां धात्री श्रद्धा सर्वस्वजीवननम् ॥"

III. सेवा के मूल भाव 'समर्पण' की वृत्ति जब हृदय में जागरूक हो उठती है, तो परमार्थ की वेदी पर स्वार्थ अपना स्वरूप-परिवर्तन कर उदाराशय हो जाता है. उस समय सेवक के अन्तर में इतनी शक्ति का आ जाना कि वह भवसागर से

Scanned with CamScanner

दूसरे को तार दे, सहज और स्वाभाविक हो जाता है. छन्द में 'सजल' का प्रयोग बड़े महत्त्व का है, क्योंकि जल में पड़ी नौका को पार करने के लिए पतवार का सहारा आवश्यक है उसी प्रकार वेदना से आप्लावित इस भव-सागर को तरने के लिए किसी ऐसे जीवन-सहचर की आवश्यकता होती है, जो निःस्वार्थ-भाव से प्रत्येक स्थिति में सहयोगी सिद्ध हो.

डॉ. प्रेमशंकर ने लिखा है कि कोमल वृत्ति के कारण ही कवि ने श्रद्धा को नारी-रूप में अंकित किया है. नारी के बिना पुरुष-अपूर्ण है. मनु भी श्रद्धा के अभाव में व्यर्थ है. नारी ही पुरुष-जीवन की पूर्णता है. श्रद्धा से संचालित मनु ही आनन्दमय हैं.

श्रद्धा के समर्पण में पूर्ण त्याग की भावना है. यह सच भी है कि बिना पूर्ण त्याग के समर्पण भी अपूर्ण है :

"त्याग में हो यदि दुःख का कण,
त्याग मिट जायेगा उसी ही क्षण ।
बिना त्याग न त्याग सफल—
त्याग को चाहिये त्याग सकल ।"

(14)

और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान;
"शक्तिशाली हो, विजयी बनो" विश्व में गूँज रहा जय गान ।
डरो मत अरे अमृत संतान अग्रसर है मंगलमय वृद्धि;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र खिंची आवेगी सकल समृद्धि ।

शब्दार्थ—अमृत संतान = अमर जीव.

संदर्भ—जीवन के प्रति लगाव उत्पन्न करने के लिए निराश मनु के मन में विजयी बनने का मूल-मंत्र फूँकते हुए श्रद्धा मनु से कहती है.

व्याख्या—अरे मनु ! क्या तुम्हें विधाता का यह कल्याण-कारी वरदान सुनाई नहीं दे रहा ? उस विधाता का प्रेरणाप्रद विजय-गान आज सृष्टि के कण-कण में गूँज रहा है कि तुम शक्तिशाली होकर इस संसार के संघर्षों पर विजय प्राप्त करो. हे देव-पुत्र मनु ! तुम किसी भी प्रकार के भय, सन्देह और आशंका से रहित होकर इस संसार के पुनर्निर्माण और विकास-क्रम की स्मृति के निमित्त उद्यत हो जाओ. संसार के जीवन का यह केन्द्र बड़ा ही भव्य और आकर्षक है. यदि तुम भय रहित होकर इसके पुनर्निर्माण का प्रयास करोगे तो सृष्टि का समस्त वैभव और ऐश्वर्य तुम्हारे निकट स्वतः खिंचकर चला आयेगा.

विशेष—I. **अलंकार**—(i) छेकानुप्रास—विधाता, वरदान, सकल समृद्धि.

(ii) गूढोत्तर—सुनते नहीं.

(iii) मानवीकरण—समृद्धि.

II. प्रस्तुत छन्द तथा श्रद्धा के कथन के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि भारत के उस समय के निराश वातावरण के लिए यह कथन अत्यधिक राष्ट्रीय महत्व का था और आज के हिंसावादी विश्व के लिए भी यह छन्द राष्ट्रीय गौरव बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है. भारतीय विदुषी, महिमा-मण्डित नारी श्रद्धा की वाणी में कितना ओज भरा हुआ है यह उसके चरित्र को बहुत अधिक प्रभावशाली बना देता है. यही नहीं, प्रसादजी के नाटकों की कुछ नारियाँ भी वाणी एवं रूप के अलौकिक गुणों से युक्त हैं.

(15)

देव-असफलताओं का ध्वंस प्रचुर उपकरण जुटा कर आज;
पड़ा है बन मानव संपत्ति पूर्ण हो मन का चेतन राज ।
चेतना का सुन्दर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य;
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य अक्षरों से अंकित हो नित्य ।

शब्दार्थ—उपकरण = साधन, साज = साधन.

संदर्भ—देव-जाति के विनाश और सृष्टि के भावी विकास पर चिन्तन करते हुए श्रद्धा निराश मनु से कहती है.

व्याख्या—देव-जाति अत्यधिक विलासी होने के कारण पतन को प्राप्त हुई. अतएव उसकी असफलता के कुछ ध्वंस अवशेष इधर-उधर बिखरे पड़े हैं. उन्हीं अवशेषों से मानव सृष्टि साकार हो सकती है. अरे मनु ! मनुष्य की सृष्टि-विकास रूपी सम्पत्ति का विकास और पुनर्निर्माण पृथ्वी पर फैले इन्हीं उपकरणों की सहायता से करो जिससे दिव्य गुणों से युक्त मन की यह चैतन्यावस्था विलासिता का परित्याग कर दैवीय गुणों से आपूरित हो जाय और जगत् में एकता का साम्राज्य हो. मनुष्य के नवीन निर्माण का यह सुन्दर इतिहास समस्त मानवोचित सद्गुणों वाला मानवीय चेतना का इतिहास होगा. श्रद्धा की यह आकांक्षा है कि साम्यभाव से प्रेरित मानवीय चेतना का यह इतिहास संसार में दिव्य और अलौकिक अक्षरों से अंकित हो.

विशेष—I. **अलंकार**—(i) रूपक—असफलताओं का ध्वंस, हृदय—पटल.

(ii) लक्षणा का चमत्कार सम्पूर्ण छंद.

II. विश्वम्भर 'मानव' ने द्वितीय छन्द के विषय में लिखा है कि इस छन्द के पीछे लेखन-क्रिया का चित्र निहित है. कागज के स्थान पर हृदय, अक्षरों के स्थान पर दिव्य अक्षर (ज्ञान) और भावों के प्रयोगों के स्थान पर अखिल मानव-भाव हैं. इस प्रकार मानो चेतना के इतिहास या भावों के विकास की कहानी का निर्माण हो रहा है.

Scanned with CamScanner

(16)

विधाता की कल्याणी सृष्टि सफल हो इस भूतल पर पूर्ण;
पटें सागर, बिखरे ग्रह-पुंज और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।

शब्दार्थ-भूतल = पृथ्वी, पुंज = समूह.

संदर्भ-सृष्टि के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में श्रद्धा अत्यन्त आतुर है.

व्याख्या-वह चाहती है कि विधाता की भावी कल्याणमयी मानवीय सृष्टि इस भूमण्डल पर पूर्ण सफल हो. सृष्टि के इस पुनर्विकास के लिए भले ही सागर पट जायें अर्थात् सागर के समान मानव विद्वेष की गहराइयाँ हो जायें, ग्रह-नक्षत्र समूह आकर्षणविहीन और समस्त ज्वालामुखी भयानक रूप में चूर्ण-चूर्ण हो जायें, परन्तु हर स्थिति में मानवीय सृष्टि का पूर्ण विकास अत्यन्त आवश्यक है.

डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने इस छन्द की व्याख्या करते हुए लिखा है-"छन्द का अर्थ दूसरी दशा में भी उन्मुख किया जा सकता है कि कल्याणकारी मानव-सृष्टि इस भूतल पर पूर्ण सफलता प्राप्त करे. विद्वेष के सागर पट कर समस्थल को समतल हों, बिखरे हुए नक्षत्र पुंजीभूत हों (आकर्षणबद्ध हों) अर्थात् विश्व के मानव समुदाय-भावना से प्रेरित हों और विघ्न उपस्थित करने वाले भयानक ज्वालामुखी चूर्ण-चूर्ण होकर शमित हो जायें।"

विशेष-I. अलंकार-रूपकातिशयोक्ति- ज्वालामुखियाँ.

II. मानवीय सृष्टि की पुनः संरचना करने के लिए श्रद्धा किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति के लिए उद्धत हुई प्रतीत होती है. अतएव इससे उसके सबल व्यक्तित्व का संकेत हमें मिलता है.

(17)

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

शब्दार्थ-व्यस्त = चंचल, गतिमान.

संदर्भ-श्रद्धा अन्त में मनु से कहती है.

व्याख्या-संसार में शक्ति के वे कण जो उपाय रहित होकर एक दूसरे की उपेक्षा किये हुए खण्डित रूप में व्याकुल होकर बिखरे पड़े हैं, समन्वय भावना से प्रेरित होकर यदि मानव उन्हें संकलित करे तो निश्चय ही यह मानवीय सृष्टि विजयिनी हो जाय.

विशेष-I. अलंकार-(i) चैतन्यारोपण-विद्युत् कण.

(ii) अनुप्रास-प्रथम पंक्ति.

II. इस छन्द पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि श्रद्धा के सम्पूर्ण जीवन-सन्देश में गीता का 'कर्म सिद्धान्त' मुखरित हो रहा है. 'शक्ति के विद्युत्कणों समस्त' करने में आधुनिक विज्ञान का सिद्धान्त भी संकेतित है. आधुनिक वैज्ञानिक शक्ति, इन्हीं इलेक्ट्रॉन के संकलित रूप में, वैज्ञानिकों की विशिष्ट, शक्ति अणु बम के रूप में देखने को मिलती है.

"श्रद्धा के भावों में, मानव संस्कृति के लिए एक विशिष्ट निश्चय मुखरित हो रहा है. यह निश्चय ही व्यक्ति को द्रष्टा कवि की सीमा में पहुँचा देता है. जैसाकि अंग्रेज कवि आस्कर वाइल्ड ने कहा है-"When man acts, he is a puppet, when he decides, he is a poet." इस प्रकार श्रद्धा सर्ग ही नहीं सम्पूर्ण कामायनी काव्य मानव की विजय का ही आख्यान है और इस विजय का मूल कारण श्रद्धा कही जा सकती है. इस प्रकार यह 'श्रद्धा सर्ग' समूचे काव्य का मेरुदण्ड कहा जा सकता है."

(18)

मसृण गांधार देश के, नील रोम वाले मेषों के चर्म;
ढक रहे थे उसका वपु कांत, बन रहा था वह कोमलवर्म।

शब्दार्थ-मसृण = आकर्षक. नील रोम = नीले रूएँ वाले. मेषों के चर्म = भेड़ों की खाल. वपु कांत = सुन्दर शरीर. वर्म = आवरण.

सन्दर्भ-प्रस्तुत छन्द में श्रद्धा के सुन्दर शरीर का वर्णन है.

व्याख्या-श्रद्धा के सुन्दर शरीर पर गान्धार देश की भेड़ों का नीलवर्णी रुएँ वाला स्निग्ध चर्म का आवरण उसके शरीर पर इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे उसने अपने कोमल अंगों की रक्षा के लिए कवच धारण कर लिया हो.

विशेष-(I) छन्द में वचन-दोष द्रष्टव्य है.

(II) छन्द से उस काल की वेशभूषा का पता चल जाता है. ऋग्वेद-काल में इस प्रकार के चर्म का उपयोग होता था; दूसरे पर्वतीय क्षेत्र में शीत से बचने के लिए चर्म के वस्त्र धारण करना आवश्यक ही होगा. ऋग्वेद में यह भी उल्लेख मिलता है कि देवेन्द्र (इन्द्र) भी गान्धार देश की भेड़ों का चर्म धारण करता था.

(19)

या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग फोड़ कर धधक रही हो कांत;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रान्त।

शब्दार्थ-इन्द्र = श्रेष्ठ, सुन्दर. इन्द्र नील लघु शृंग = नीलम के पर्वत की लघु व सुन्दर श्रेणी. कांत = सुन्दर. अचेत = शान्त, सोया हुआ. माधवी रजनी = वसन्त की रात्रि. अश्रान्त = श्रम रहित, निरन्तर.

Scanned with CamScanner

सन्दर्भ–श्रद्धा के सुन्दर मुख का वर्णन है.

व्याख्या–श्रद्धा के मुख को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वसन्त ऋतु की रात्रि में कोई शान्त ज्वालामुखी किसी नीलम के पर्वत की किसी सुन्दर लघु श्रेणी को उद्भिन्न करके अपने अपूर्व सौन्दर्य के साथ चमक रहा हो, किन्तु उसमें किसी प्रकार का विस्फोट नहीं हो रहा था.

विशेष–(I) छन्द में 'या कि' प्रयोग होने के कारण सन्देह की स्थिति पैदा हो गई है. अतः सन्देह अलंकार है.

(II) मुख-सौन्दर्य के वर्णन में 'ज्वालामुखी' की कल्पना करने से यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है.

(III) इस छन्द के सम्बन्ध में रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है कि इस उत्प्रेक्षा में 'शृंग' को 'नव' एवं 'लघु' कहकर तथा ज्वालामुखी को कान्त, नवीन और अचेत बताकर उसने वह्नि-शिखा की कर्कशता हर ली है और उसे युवती नारी की उपमा के योग्य बना दिया है.

(IV) एक टीकाकार ने इस छन्द पर विस्तृत टिप्पणी करते हुए लिखा है कि श्रद्धा के मुख पर चढ़ती वय का लावण्य था, ब्रह्मचर्य की कान्ति थी, वातावरण की ताजगी थी. इसीलिए उसके मुख की शोभा को 'कान्त' (अरुण) रूप 'धधकती' हुई बताया है. 'लघु ज्वालामुखी' प्रयोग उसकी शरीर-सृष्टि का सूचक है. 'ज्वालामुखी' के मुख पर ज्वाला होती है, इसके मुख पर भी अरुणिमा है. पर वह ज्वाला की शोभा किसी प्रकार का विस्फोट नहीं कर रही, इसीलिए उसे अचेत कहा है. उस मुख की शोभा में किसी प्रकार का विघात नहीं हो रहा था, इसीलिए उसे 'अश्रान्त' कहा है. 'माधवी-रजनी' उस समय के रमणीय वातावरण की सूचना देती है.

(20)

नित्य यौवन छवि से हो दीप्त विश्व की करुण कामना मूर्ति;
स्पर्श के आकर्पण से पूर्ण प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति ।
उपा की पहिली लेखा कांत, माधुरी से भीगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक द्युति की गोद ।
कुसुम कानन-अंचल में मन्द पवन प्रेरित सौरभ साकार;
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु कर आधार ।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधु-राका मन की साध;
हँसी का मद विह्वल प्रतिविम्व मधुरिमा खेला सदृश अवाध ।

शब्दार्थ–यौवन छवि = युवावस्था की प्रफुल्लता. दीप्त = प्रकाशित. कामना मूर्ति = साकार कामना. स्फूर्ति = उमंग. लेखा = रेखा, किरण. कांत = सुन्दर. माधुरी = मधुरता. भीगी = नहायी हुई, स्नात. भर मोद = प्रसन्नता से भरी हुई. मद भरी = मस्ती लिए हुए. सलज्ज = लज्जा भाव से संकुचित. तारक = प्रभातकालीन तारा. द्युति की गोद = शोभा के अंक (गोद या बीच) में. कुसुम कानन-अंचल = पुष्पों से मण्डित वन-प्रदेश. मन्द पवन प्रेरित सौरभ = वायु के मन्द प्रवाह में बहने वाली सुगन्धि. रचित परमाणु पराग = पराग के परमाणुओं (कणों) से निर्मित. ले मधु का आधार = पुष्प रस से स्निग्ध करके. नवल मधु-राका = चाँदनी युक्त रात्रि. साध = कामना, भावना. मद विह्वल प्रतिबिम्ब = चांचल्य गुणों से युक्त मस्त प्रतिमा. मधुरिमा खेल = मन को रमाने वाला खेल. अबाध = निरन्तर.

सन्दर्भ–श्रद्धा के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन है.

व्याख्या–कवि का कथन है कि श्रद्धा चिरकाल तक बने रहने वाले यौवन की आभा से मण्डित है. उसके रूप को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विश्व की करुणा व सौम्य-भावना ही साकार रूप में अद्वितीय रति की मूर्ति बन गई हो. श्रद्धा के उस अनुपम सौन्दर्य को देखकर उसे प्राप्त करने की अथवा मात्र उसे स्पर्श करने की सहज वृत्ति किसी में भी जाग्रत हो सकती थी. उसका वह अलौकिक सौन्दर्य चेतनाशील प्राणियों में ही स्फूर्ति का संचार नहीं कर रहा था, अपितु वह चेतनारहित (जड़) पदार्थों में भी निरन्तर चेतनता को उद्बुद्ध कर रहा था.

अनुराग से आपूरित श्रद्धा के मुख पर किरण के समान उज्ज्वल मुस्कान फैल रही थी. उसके अप्रतिम रूप-सौन्दर्य का अनुमान इस तरह किया जा सकता है, जैसे किसी भोर में सितारों की तारा-छवि रूप गोद में, मधुरता से भीगी, उल्लसित होकर, अपने यौवन के मद में भरी हुई, प्रसन्न किन्तु लज्जाशील उषा की पहली कान्तिमान किरण हो.

कवि पुनः कल्पना करता है कि श्रद्धा के अनुपम स्वरूप को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी पुष्पों से भरे वन में मन्द-मन्द वायु से प्रेरित सुगन्ध ही मूर्तिमती होकर स्वयं श्रद्धा के रूप में साकार हो गई है. मानो उसके सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों का निर्माण पुष्प-रस से स्निग्ध करके पराग के कणों से किया गया हो; और श्रद्धा का वही आकारित दिव्य सौन्दर्य अपनी गन्ध बिखेरता हुआ प्रत्यक्ष खड़ा है. उसका मुख मन्द मुस्कान से युक्त है. मुस्कान का वह चांचल्य गुणों से युक्त प्रतिरूप ऐसा आभासित हो रहा है जैसे किसी पराग-कणों से निर्मित प्रतिमा के ऊपर पूर्णिमा की नव धवलित, स्निग्ध चद्रिका पड़ रही हो. उसके ओष्ठों पर फैली हुई सहज मुस्कान ऐसी लग रही थी मानो साकार मधुरिमा ही आकर क्रीड़ाएँ कर रही हो.

विशेष–(I) अन्तिम तीनों छन्दों में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है. अन्तिम छन्द में उपमा की योजना भी है.

(II) प्रथम छन्द की 'कामना-मूर्ति' में रूपक अलंकार.

Scanned with CamScanner

(III) अन्तिम दो छन्दों के सामाजिक महत्व के विषय में डॉ. फतहसिंह का कथन है कि मनु (नर) के जीवन के इन क्षणों में श्रद्धा (नारी) का इतने चित्ताकर्षक रूप में वहाँ आ उपस्थित होना सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि सामाजिक दृष्टि से मनुष्य-जीवन का सारा कर्म नारी में ही केन्द्रित है. नारी ही नर की शक्ति है, और उसी में उसके रस का व्यावहारिक स्रोत है. सर्वप्रथम वह पुरुष के सामने एक आकर्षण, एक स्फुरण, उल्लास और उत्साह का बिम्ब होकर आती है.

(21)

पहेली सा जीवन है व्यस्त उसे सुलझाने का अभियान;
बताता है विस्मृति का मार्ग चल रहा हूँ बनकर अनजान।
भूलता ही जाता दिन-रात सजल अभिलाषा कलित अतीत;
बढ़ रहा तिमिर गर्भ में नित्य, दीन जीवन का यह संगीत।
क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रान्त ? विवर में नील गगन के आज;
वायु की भटकी एक तरंग, शून्यता का उजड़ा सा राज।
एक विस्मृति का स्तूप अचेत, ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिम्ब;
और जड़ता की जीवन राशि, सफलता का संकलित विलम्ब।

शब्दार्थ–पहेली = समस्या. व्यस्त = निरत, उलझनपूर्ण. बताता है ...... मार्ग = सब कुछ विस्मृत हो जाना. सजल अभिलाषा = कामना भरी इच्छा. कलित अतीत = बीता हुआ सुन्दर समय. तिमिर गर्भ = अंधकार की तह में. संगीत = करुण कथा. उद्भ्रान्त = उद्देश्य रहित. विवर में नील गगन के = भूतल पर. विवर = गुहा. तरंग = लहर. शून्यता का उजड़ा सा राज्य = अभावों से भरा हुआ राज्य. विस्मृति का स्तूप = भूल से भरा हुए एक टीला. अचेत = संज्ञाहीन. ज्योति = प्रकाश. धुँधला = अस्पष्ट. प्रतिबिम्ब = झाँकी. जड़ता की जीवन-राशि = घनीभूत जड़ता. संकलित विलम्ब = अत्यधिक विलम्ब.

सन्दर्भ–जब अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित श्रद्धा को मनु ने प्रत्यक्ष देखा तो वह मनु से उनका परिचय पूछने लगी. श्रद्धा के मुख से परिचय की जिज्ञासा वाला प्रश्न सुनकर मनु अपनी वर्तमान निरुपायावस्था को निराशा-भरे शब्दों में कहने लगे. प्रस्तुत छन्दों में मनु के उसी निराशायुक्त परिचय का वर्णन है.

व्याख्या–मनु श्रद्धा से कहने लगे कि मेरा यह जीवन पहेली के समान अनेक उलझनों से भरा हुआ है. मैं बड़े अभिमान से इसे सुलझाने (समझने) का उपक्रम रचता रहता हूँ, किन्तु जीवन की इस उलझनपूर्ण गति में मेरा मार्ग धुँधला ही बना हुआ है. अतएव अनजाने पथिक की भाँति इस अनिर्दिष्ट पथ पर चल रहा हूँ; किन्तु यह ज्ञान नहीं है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ. मेरे जीवन की गति इतनी उलझनपूर्ण है कि अब तो मैं दिन-प्रतिदिन कामनाओं और अभिलाषाओं से आपूरित उस उल्लासमय अतीत को ही विस्मृत करता जा रहा हूँ. उस सुखमय स्थिति को पुनः प्राप्त करने की कोई भी आशा शेष नहीं रही है; इसी कारण मेरे करुण जीवन का संगीत अर्थात् इस जीवन की करुण कथा अंधकार के गर्भ में ही प्रविष्ट होती जा रही है.

मनु पुनः कहते हैं कि मैं अपने निराशा भरे जीवन के विषय में और क्या कहूँ? मैं तो नीलाकाश के नीचे, विस्तृत गुहा में, भूले भटके राही की तरह उसी प्रकार पथ-भ्रमित हो रहा हूँ, जैसे वायु की कोई भटकी हुई तरंग हो. मेरा सम्पूर्ण भव-जीवन अभावों से भरे राज्य के समान है. मेरे जीवन के चारों तरफ अभाव ही अभाव है. मेरा यह जीवन विस्मरण के एक संज्ञाहीन स्तूप के समान है, अर्थात् मैं अपने अतीत की सभी विशिष्टताओं को विस्मृत कर चुका हूँ. चूँकि मेरे भीतर की चेतना का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान विलुप्त हो चुका है; अतः मेरा यह लघु जीवन प्रकाश के एक धुँधले प्रतिबिम्ब के रूप में आभासित हो रहा है. इसी कारण अपने भविष्य को आशामय बनाने की मेरी इच्छा प्रायः विलुप्त हो चुकी है. आशा-अभिलाषाओं के नष्ट हो जाने के कारण यह जीवन मुझे जड़ता का पूँजीभूत स्वरूप ही लक्षित हो रहा है. इस जीवन की सफलता अब तो विलम्ब में ही टिकी हुई है. भाव यह है कि सफलता के स्थान पर मुझे विकलता और विलम्ब का पथ ही दृष्टिगत होता है अर्थात् जीवन में सफलता प्राप्त करने का कोई उपचार दिखाई नहीं दे रहा है.

विशेष–(I) प्रथम छन्द में पूर्णोपमा अलंकार.

(II) 'सजल अभिलाषा' में विशेषण-विपर्यय' तथा 'जीवन संगीत' में रूपक अलंकार है. 'वायु की भटकी तरंग' में मानवीकरण तथा समस्त छन्दों में मालोपमा अलंकार.

(III) छन्दों में छायावादी निराशा व्यक्त हुई है.

(22)

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष;
दे रहा हो कोकिल सानन्द सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश।
"भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान;
इधर रह गंधर्वो के देश, पिता की हूँ प्यारी संतान।
घूमने का मेरा अभ्यास बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य;
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य।
दृष्टि जब जाती हिम-गिरि ओर प्रश्न करता मन अधिक अधीर;
धरा की यह सिकुड़न भयभीत आह, कैसी है ? क्या है पीर ?

शब्दार्थ–आगन्तुक व्यक्ति = श्रद्धा. सविशेष = विशेष प्रकार की. मधुमय सन्देश = वसन्त (आशा) के आगमन की

Scanned with CamScanner

सूचना. गन्धर्व = संगीत कला में प्रवीण देव जाति विशेष. तल्लीन होकर. हृदय मुक्त व्योम-तल = पृथ्वी पर. व्यस्त = तल्लीन होकर. हृदय सत्ता का = भावना-पक्ष का. सुन्दर सत्य = मूल सौन्दर्य. पीर पीड़ा.

सन्दर्भ–नवागन्तुक व्यक्ति अर्थात् श्रद्धा मनु को अपना परिचय दे रही है.

व्याख्या–मनु के हृदय की विशेष उत्कण्ठा को शान्त करते हुए आगन्तुक व्यक्ति अर्थात् श्रद्धा अपना विशेष आत्म-परिचय देने लगी. उसकी मुखर वाणी मनु के मन को उसी प्रकार प्रफुल्लित कर रही थी, जैसे कोई कोकिला अपनी रसीली वाणी से पुष्पों को वसन्तागमन की पूर्व सूचना देती है. भाव यह है कि श्रद्धा की वाणी ने मनु के निकट सुखद भविष्य की पूर्व सूचना दी.

श्रद्धा, विवरणात्मक शैली में, अपना परिचय देते हुए मनु से कहती है कि इधर गन्धर्व-प्रदेश में रहकर, ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मेरे मन में नवीन उत्साह भरा हुआ था. पिता की प्रिय सन्तान होते हुए भी मैं इधर ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आई हूँ. मेरी भ्रमणशीलता का चाव कम नहीं हुआ और इसी कारण इस मुक्त आकाश के नीचे पृथ्वी पर अभ्यासवश मैं निरन्तर ही घूमती रही. उस समय मेरे हृदय की जिज्ञासा भावना-लोक के सुन्दर सत्य के अन्वेषण में लगी हुई थी, किन्तु उसी क्षण अर्थात् पृथ्वी पर भ्रमण-काल में जब मेरी दृष्टि सहसा हिमालय पर्वत की ओर पड़ती थी, तो मेरे मन में यह प्रश्न गूँजकर मुझे अधीर कर देता था कि क्या यह पृथ्वी भी किसी भयवश सिकुड़कर इन पर्वतों के रूप में केन्द्रीभूत हो गई है अर्थात् इस पृथ्वी को कौनसी पीड़ा है, जिसके कारण यह पर्वतों के रूप में संकुचित हो गई है.

विशेष–(I) पहले छन्द में आगत 'सुमन' और 'मधुमय' शब्दों में श्लेष तथा वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार की योजना है.

(II) तीसरे छन्द के 'कुतूहल' में मानवीय गुणों का आरोप होने के कारण इसमें मानवीकरण अलंकार है. दूसरे, 'कुतूहल' में व्यस्तता होने से विशेषण-विपर्यय अलंकार भी है.

(III) अन्तिम छन्द में धरा को भयभीत नारी के रूप में चित्रित किया है; अतः मानवीकरण अलंकार है. साथ ही प्रस्तुत वर्णन में अप्रस्तुत की योजना से समासोक्ति अलंकार भी है.

(IV) तीसरे छन्द पर प्रकाश डालते हुए एक टीकाकार ने लिखा है कि यहाँ 'हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य' से तात्पर्य है भाव-लोक की मूल वृत्ति का अनुभव प्राप्त करने से. उस स्थिति तक पहुँचने के लिए बड़ी साधना और तत्परता की आवश्यकता है. कवि तो अपना सम्पूर्ण जीवन ही उसी भाव लोक के अधिष्ठान के लिए लगा देता है. जिस प्रकार 'हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य की खोज कर' कवि अनेक भाव राशियाँ, कविता के रूप में जगत् को दे जाता है, उसी प्रकार श्रद्धा के द्वारा सृष्टि को सन्तति के रूप में मानव-रत्न की उपलब्धि की सम्भावना की जा सकती है. 'श्रद्धा' यहाँ हृदय का प्रतीक होकर आई है.

(23)

मधुरिमा में अपनी ही मौन, एक सोया संदेश महान;
सजग हो करता था संकेत; चेतना मचल उठी अनजान।
बढ़ा मन और चले ये पैर, शैल मालाओं का शृंगार;
आँख की भूख मिटी यह देख आह कितना सुन्दर सम्भार!
एक दिन सहसा सिंधु अपार लगा टकराने नग तल क्षुब्ध;
अकेला यह जीवन निरुपाय आज तक घूम रहा विश्रब्ध।
यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न, भूत-हित-रत किसका यह दान!
इधर कोई है अभी सजीव, हुआ ऐसा मन में अनुमान।

शब्दार्थ–मधुरिमा = माधुर्य. सोया = मौन, निहित. मचल उठी = जाग्रत हो उठी. बढ़ा मन = उत्साह भर गया. शैल मालाओं का शृंगार = पर्वत-श्रेणियों का विस्तार. आँख की भूख = दर्शन की जिज्ञासा. सुन्दर सम्भार = स्वर्गिक वैभव. नग तल = पर्वत की घाटी. क्षुब्ध = क्रोध से भरा. विश्रब्ध = शान्त भाव से. भूत-हित-रत = प्राणियों के कल्याण में सजग. सजीव = प्राणी, जीवनधारी.

सन्दर्भ–श्रद्धा अपना पूर्ववृत्त मनु से कह रही है.

व्याख्या–अपना परिचय देते हुए श्रद्धा मनु से कहती है कि जब मैं इस हिमालय की शैल-मालाओं पर विचरण कर रही थी तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे चारों ओर फैले स्वर्गिक सौन्दर्य से कोई मौन सन्देश मुझे सुना रहा हो. वही सन्देश मानो मुखर होकर मुझे अग्रसर करने के लिए प्रेरणा दे रहा था और मेरी अपनी भावना भी उस अलौकिक सौन्दर्य का दर्शन करने के लिए अनायास रूप में सजग दिखाई देने लगी. अपनी इस जिज्ञासा के प्रति स्वयं ही अनजान बनी रही. अपनी उसी मनोवृत्ति के कारण मेरे मन में एक विशेष उत्साह भर गया और मैं उस अलौकिक सौन्दर्य को देखने के लिए आगे बढ़ चली. पर्वत-श्रेणियों की अनुपम सुषमा देखकर मेरा मन मुग्ध हो उठा और मेरी दर्शन वृत्ति की जिज्ञासा शान्त होने लगी. उस रमणीक प्राकृतिक दृश्य को देखकर मेरा मन पूर्ण सन्तुष्ट हो गया.

श्रद्धा आगे कहती है कि सहसा तभी विशाल सागर मर्यादा रहित हो गया और उसकी उत्ताल तरंगें विक्षुब्ध होकर पर्वत के अधोभाग को आन्दोलित करने लगीं. उसी समय से लेकर आज तक मैं एकाकी और उपायहीन होकर इस निर्जन

Scanned with CamScanner

प्रदेश में शान्त भाव से भ्रमण कर रही हूँ. इधर, मुझे यहाँ बलि के निमित्त बिखरा हुआ अन्न दिखाई दिया; जिसे देखकर मेरे मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि प्राणियों के कल्याण के लिए दया-भाव से इस अन्न का दान किसने किया है? मुझे यह आभास होने लगा कि निश्चय ही इधर कोई प्राणी अभी भी जीवित है.

विशेष–(I) प्रथम छन्द में मानवीकरण अलंकार है. साथ ही 'सोये सन्देश' को 'सजग' होता हुआ दिखाया है; अतः विरोधाभास अलंकार है.

(II) दूसरे छन्द (आँख की भूख) में प्रयोजनवती लक्षणा है.

Scanned with CamScanner